IOSR Journal of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 26, Issue 8, Series 1 (August. 2021) 59-71
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

संत चरणदास के काव्य में भक्ति के विभिन्न रूप

सिया राम मीणा
सह आचार्य , हिन्दी विभाग , बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय , अलवर , राजस्थान , 301001

शोध सारांश
भारतीय धर्म साधना में भक्ति मार्ग का विशिष्ट स्थान है। 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ सेवा करना है। भगवान में परम प्रेम का होना ही भक्ति है। भक्ति के बीज वेदों में भी देखे जा सकते हैं। 'भक्ति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उपनिषदों में हुआ है। ईवर से प्रेम करना या ईवर में अपने को लगाना ही भक्ति है। पहले हम प्रभावित होते हैं, फिर प्रभाव जम जाता है तब श्रद्धा की भावना पनपती है और वही श्रद्धा पराकाष्ठा तक पहुँचते–पहुँचते भक्ति का स्वरूप धारण कर लेती है। भक्ति भावना निछल और शुद्ध हृदय की उपज है। जहाँ स्वार्थ या अभिमान जैसे पाप टिक नहीं सकते, वहाँ तो कल्याण स्रोत प्रवाहित होता है, जिसके प्रवाह में मानव हृदय का कलु धुल जाता है। ऐसे हृदय में ही भक्ति भावना का निवास होता है। लोग कहते हैं कि जब भगवान की अनुकंपा होती है तभी हम उसकी ओर आकृष्ट होते हैं और जब तक हमारे संस्कारों का उदय नहीं होता तब तक भगवान की अनुकंपा नहीं होती। अतः भक्ति भावना के लिए हमारे संस्कारों के उदय होने की आवयकता है या यह कहें कि अच्छे संस्कारों का उदय हो जाना ही भक्ति का परिचायक है।

मुख्य बिन्दु :– संत चरणदास के काव्य में भक्ति , ज्ञान मार्ग की निस्सारता , वैधि भक्ति , नवधा भक्ति , प्रेमा भक्ति , सांख्य भक्ति , परा भक्ति , माधुर्य भक्ति एवं निष्कर्ष ।

प्रस्तावना :–

वस्तुतः भक्ति हमारे हृदय का वह भाग है जिसके द्वारा हमें भगवान के दर्शन होते हैं जिससे हमारी आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है तथा हम सांसारिकता से ऊपर उठते हैं। इसी भाव को नारद, शांडिल्य, शुकदेव, चरणदास आदि भक्त आचार्यों ने भक्ति पुरानुरक्तिरीवरं तथा सा स्वास्मिन परम प्रेमरूपा आदि के द्वारा अभिव्यक्त किया है। संत चरणदास की साधना श्रीमद्भागवत में निरूपित सगुण मार्गीय वैष्णव रीति की वह भक्ति साधना है जिसमें योग, कर्म, ज्ञान और भक्ति का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। संत चरणदास जी के काव्य में भक्ति के विषतः चार रूप मिलते हैं–वैधि, प्रेमा, परा और माधुर्य।

चरणदास जी ने अपनी वाणियों में सर्वत्र योग और ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों तथा उनसे होने वाले कायक्लेों और उन मार्गों के अवरोधक तत्वों का उल्लेख किया है। उन्होंने प्रथम नवोधा भक्ति को और तदनन्तर उसकी परिपक्वता होने पर प्रेमा भक्ति अपनाने पर जोर दिया है। उनकी साधना मूलक विचारधारा प्रेमा भक्ति पर ही जाकर टिकती है। वस्तुतः वृन्दावन में रासलीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने तथा गुरु शुकदेव से ज्ञान गोष्ठी करने के बाद उनसे भक्ति के प्रचार का आदे प्राप्त होने पर वे इस ओर प्रवृत्त हुए। गुरु के आदे के बाद इसके अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं था। गुरु के साथ–साथ स्वयं भगवान कृष्ण ने भी उन्हें कृष्ण भक्ति के प्रचार के लिए अनेक बार निर्दो दिया था।

संत चरणदास के काव्य में भक्ति के विभिन्न रूप

संत चरणदास जी ने भक्ति सम्बन्धी अपने विचारों का प्रकटीकरण दो ग्रन्थों में किया है–'भक्ति सागर' तथा भक्ति पदार्थ वर्णन। कवि ने इन दोनों ही ग्रन्थों में भक्ति की महत्ता, भक्ति की आवयकता, भगवान को प्रसन्न करने में भक्ति का स्थान और उसकी महत्ता का वर्णन किया है। संत चरणदास ने भक्ति पदार्थ वर्णन काव्य में नवधा भक्ति का उल्लेख किया है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन (ध्यान/भजन करना) ही नवधा भक्ति के प्रमुख अंग माने गए हैं। अर्चन का स्थान पाद सेवन के अनन्तर ही आता है।

इसके अतिरिक्त इस भक्ति मार्ग में दास्य भक्ति–श्रद्धा और प्रेम पूर्वक दास की भांति ब्रह्म की सेवा करना। साख्य भक्ति, आत्म निवेदन, प्रेमा भक्ति, परा भक्ति, माधुर्य भक्ति, कर्म मार्ग, वैधि भक्ति आदि की सहज व सरल भावों के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है। जिनका विस्तार से निम्न प्रकार वर्णन किया जा सकता है–

ज्ञान मार्ग की निस्सारता

भक्ति साधना की ओर उन्मुख होने से पूर्व संत चरणदास ने उपनिषदों के माध्यम से ज्ञान मार्ग का गहन चिन्तन व मनन किया। परिणामस्वरूप उन्होंने 'पंचोपनिषद' का अनुवाद किया। इस दुषद अध्ययन से ज्ञानमार्ग के प्रत्युहों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। वे इसकी असाध्यता और सर्वजन दुर्लभता से भलीभाँति परिचित थे। गुरु भक्ति प्रका में अपने ष्यि

रामरूप जी को ज्ञान की साधना का विस्तृत परिचय देते हुए उन्होंने सर्वप्रथम तीन कोटियाँ बताई–"ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मर्दा, ब्रह्मभोगी। ब्रह्मज्ञानी उन्होंने उसको माना जो समस्त इन्द्रियों को जीत कर ब्रह्म के रहस्य को पहचान जाता है। ब्रह्मर्दा उनकी दृष्टि में वह है, जो अपने ज्ञान चक्षुओं को खुला रख कर ब्रह्म के साकार दर्शन करता है और ब्रह्मभोगी उनके लिए वह है जिसकी लौ सदैव ब्रह्म में लगी रहती है। जिसे परमानन्द की अनुभूति हो गई हो, जगत से जो ऊपर उठ चुका हो, मन से बन्धन मुक्त हो, कामना शेष हो गया हो।"1

ऐसा ज्ञानी व्यक्ति ब्रह्म को स्व में आरोपित कर सर्वत्र देखता है। वह हर्ष शोक से ऊपर उठ कर निर्भय अनाश्रित और जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त हो अहंकार, वासना, कर्म–बन्धन, काम आदि से परे उठकर ज्ञान मूलक हो जाता है और यही ज्ञान वैराग्य मूलक होता है। मानव अपने तन की निस्सारता, सामाजिक सम्बन्धों की स्वार्थपरता, सांसारिक समृद्धियों की क्षणभंगुरता, दृय जगत के प्रति व्यापक भ्राँति का अहसास उसके मन में निरति का भाव उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः स्व, पर, जीव, जगत, परम तत्व और मानव जीवन सम्बन्धी अन्य रहस्यों को परमार्थतः या यथार्थतः जानना ही ज्ञान है। तात्पर्य यह है कि ज्ञान वैराग्य का जनक है और वैराग्य ज्ञान, योग और भक्ति साधना का प्रबल साधक तत्व। हिन्दी साहित्य की ज्ञान मार्गी साधना में शास्त्रीय और पारम्परिक ज्ञान को अनुभूत ज्ञान से दोयम दर्जे का माना गया है।

चरणदास के काव्य में ज्ञान के सभी स्रोतों के प्रति आदर का भाव है। वे परम्परावादी या सनातनवादी अथवा शास्त्रवादी होते हुए भी समय के साथ चलना जानते हैं। यह अलग बात है कि वृन्दावन और दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में राधाकृष्ण युगलोपासना प्रेम भक्ति से भरी हुई है जिसका प्रचार–प्रसार चरणदास ने विष रूप से किया है। ज्ञान दा के लक्षण बताते हुए संत चरणदास जी कहते हैं कि सतगुरु और संतों की कृपा से जब किसी साधक में ज्ञान दृष्टि का आगम होता है तब सब आपा मिट जाता है और मन ब्रह्म में स्थिर हो जाता है। फिर तो ज्ञानी के लिए ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की एकाकारता या तदाकारता स्थापित हो जाती है तथा बन्धन और मुक्ति का भी अभेद हो जाता है। इस स्थिति में साधक या ज्ञानी के लिए बैरी–मित्र, पाप–पुण्य और सुख–दुःख का अन्तर स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए चरणदास जी कहते हैं–

तब कोइ मिन्तर बैरी नाहीं, पाप पुण्य की परै न छाहीं।

हरष शोक सम होजा दोऊ, रक्षा करो कि मारो कोऊ।

कोऊ हाथ में भोजन देजा, कोऊ छीन कर यों हीं लेजा।

दोनों एक बराबर वाके, जग व्यवहार कछु नाहिं जाके।

ज्ञान दा ऐसे करी गाई, चरणदास सुकदेव बताई।

ज्ञान दा आवन कठिन, बिरला जानै कोय।

ज्ञान दा जब जानिये, जीवत मृत्यक होय।2

चरणदास जी के अनुसार ज्ञान मार्ग में सबसे बड़ी बाधा विषय वासना है। काम और क्रोध सभी अवगुणों के जनक हैं। ज्ञानी का अहंकार भी बड़ा स्फीत होता है। ज्ञान जब भ्रष्ट होता है तो वह कथनी और करनी का सामंजस्य उत्पन्न कर देता है। परिणामस्वरूप छल, झूठ, अहंकार, विवाद और पाप–कर्म प्रबल हो जाते हैं। इन्हीं सभी विषमताओं को देखते हुए चरणदास ने ज्ञान भक्ति को छोड़ कर नवोधा भक्ति ग्रहण करने का उपदे दिया है।

नवधा भक्ति (कर्म मार्ग)

विधि द्वारा साध्य भक्ति का नाम वैधि भक्ति अथवा नवधा भक्ति है। इसमें शास्त्रानुमोदित विधि साधना आवयक है। नौ प्रकार से किए जाने के कारण इन साधनाओं को नवधा भक्ति कहा जाता है। चरणदास जी ने नवधाभक्ति के सम्बंध में कहा है–

नवधा भक्ति संभारि अंग नौ जानिले।

शरवण चितवन और कीर्तन मानिले।।

सुमिरण वंदन ध्यान और पूजा करो।

प्रभु सों प्रीति लगाय सुरति चरणन धरो।।3

श्रवण– एकाग्रचित्त होकर हरि गुण को सुनना तथा आनन्द लेना ही श्रवण है। इसके अन्तर्गत हरि की लीला, हरि कथा, महत्त्व, शक्ति, स्रोत को मन से जिज्ञासापूर्वक लगातार सुनना श्रवण भक्ति है।

कीर्तन– ईवर के गुणों का प्रेमपूर्वक गान ही कीर्तन है।

सुमरि सुमरि गुन गाइयेरे।

नर नाराइन, सकल सिरामणी, जनम अमोलक आहि रे।4

अर्थात अपने प्रभु ईश्वर के गुण, चरित्र, नाम और पराक्रम का उमंग और उल्लासपूर्वक कीर्तन करना कीर्तन भक्ति है।

स्मरण– ईवर के नाम, रूप, गुण एवं रहस्यों का श्रद्धापूर्वक श्रवण कीर्तन एवं मनन ही स्मरण है।

अब तू सुमिरण कर मन मेरे।

अगले पिछले अबके कीये, पाप कटैं सब तेरे।।5

अर्थात् निरन्तर अनन्य भाव से ईश्वर का स्मरण करना, उनके माहात्म्य और शक्ति स्मरण कर उस पर न्यौछावर हो जाना। संत चरणदास अपने भक्तों को इस संसार में रहते हुए भी हरि ध्यान करने की सलाह देते हैं–

जग माही न्यारे रहो, लगे रहो हरिध्यान।

पृथ्वी पर देही रहै, परमेश्वर में प्रान।।6

अर्थात् मन से प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिए। इनका मानना है कि परमात्मा में अपने मन को रमाकर सहज रूप से ईश्वर का स्मरण कर।

पाद सेवन– भगवान के चरणों में लौटना, उनको सहलाना तथा दबाना आदि पाद सेवन है। अर्थात् प्रभु के चरणों की शरण लेना और उनको ही अपना सब कुछ समझना।

अर्चन– इसका स्थूल रूप पत्र, पुष्प, फल, अक्षत और नैवेद्य आदि से प्रभु के चरणों की आराधना है। इसके अन्तर्गत मन, कर्म और वचन से ईश्वर की अराधना करना। पूर्णतः समर्पित होना।

वन्दन– ईवर के चित्र तथा मूर्ति के चरणार्विन्दों में साष्टांग दण्डवत तथा विनय करना ही वन्दन भक्ति है। ईश्वर की मूर्ति को ईश्वर के अंश रूप में सम्मान के साथ वंदन करना।

दास्य– श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक दास की भाँति ईा की सेवा करना दास्य भक्ति कहा जाता है।

नमो नमो गोविन्दजी हूँ दास तिहारो।7

अर्थात भगवान को स्वामी और अपने को सेवक समझकर श्रद्धा के साथ सेवा करना।

साख्य– आराध्य से सदा सहचर्य, सखा भाव से दृढ़ एवं निकट प्रेम रखना ही साख्य भक्ति है। जहाँ औपचारिकताएँ समाप्त हो जाती हैं एवं ईश्वर के प्रति मित्र का भाव उत्पन्न हो जाता है।

समर्पण– जब तन, मन, धन, चित्त, बुद्धि और इन्द्रिगण इन सबको प्रेमी पुरुष भगवान की भक्ति में प्रीतिपूर्वक समर्पित कर देता है तो इसे समर्पण या आत्म निवेदन भक्ति कहते हैं।

चरणदास को पार उतारो शरण तुम्हारी सोई।8

ईश्वर के चरणों में सदा के लिए समर्पण कर देना, अपनी स्वतंत्र सत्ता का न रहना, यह भक्ति की सर्वोत्तम अवस्था मानी गई है। चरणदास के काव्य में छह प्रकार की भक्तियों में से कुछ की ही विस्तार से जानकारी मिलती है। उन्होंने प्रह्लाद को स्मरण, अक्रूर को वन्दन, लक्ष्मी को चरण सेवा, राजा पृथु को अर्चन, राजा बलि को समर्पण, हनुमान को दास्य, अर्जुन को साख्य, राजा परीक्षित को श्रवण तथा शुकदेव को कीर्तन से मुक्ति प्राप्त होना बताया है। इससे यह तो स्पष्ट है कि प्रत्येक भक्त अपनी ही विधि से भगवत् सान्निध्य पाता है। उसे किसी दूसरी विधि की आवयकता नहीं है। वैधि या नवधा भक्ति का अन्तिम उद्देय भगवत् प्राप्ति है। ये विधियाँ जहाँ एक ओर श्रेणीबद्ध दिखाई देती हैं वहाँ दूसरी ओर अपने में पूर्ण भी हैं। इन विधियों में से यदि कोई व्यक्ति किसी एक का भी पालन कर लेगा तो वह भगवान के निकट हो जाएगा। ये नौ विधियाँ खण्डरूप न होकर एक की ही बहुत अभिव्यक्तियाँ हैं। मूलतः वह रति या प्रेम है जिसको अनुभूति की तीव्रता में प्रत्येक भक्त अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करता है। चरणदास जी ने अपने ग्रन्थ 'धर्म जहाज' में कर्ममय जीवन को

प्रोत्साहन दिया है तथा संत के लिए कर्म रहित जीवन की निन्दा की है। प्रायः देखा जाता है कि संत जीवन ग्रहण करने के बाद आमतौर पर संत कर्मनिरत हो जाते हैं। चरणदास जी इसका विरोध करते हैं। उनके अनुसार आलसी और निचेष्ट जीवन साधना के क्षेत्र में बाधक होता है। वे कहते हैं कि–

करणी बिन थोथा रहे, कछु न पावै भेद।

विभव प्राप्त कहुँ होयना, कहैं जु यों शुकदेव।9

अर्थात् कर्म की महत्ता को सर्वोपरि स्वीकारा है। कर्म के बिना कुछ भी रहस्य नहीं खुलता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उनका कर्म निष्काम कर्म होना चाहिए। यही प्रकारान्तर से नवधा भक्ति का मूल स्वरूप माना गया है। इसके बिना नवधा भक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। चरणदास जी ने नवधा भक्ति को अपनाने पर बल दिया है लेकिन प्रेमा भक्ति के प्रति उनका विष आग्रह है। उन्होंने नवधा भक्ति को प्रेमा भक्ति का एक सोपान मात्र माना है। उनके अनुसार नवधा साध्य नहीं है अपितु साधन है जबकि प्रेमा भक्ति काम्य है।

प्रेम भक्ति का तात, ताप तीनों नसैं।

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सकल तामै वसैं।

जो राखै मन माहिं विवेक विचारसों।

पावै पद निर्वाण बचै जग भारसों।10

अर्थात् प्रेम भक्ति के मूल में लोक मंगल की भावना निहित रहती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मूल्य तो एक अंतर्दृष्टि है। उसी के जीवन में अलौकिक प्रेम के आत्म साक्षात्कार की प्रेममय भक्ति प्राप्त होती है। नवधा भक्ति को उन्होंने वेद का फूल और योग, ज्ञान, वैराग्य सभी का मूल बताया है।

नवधा भक्ति वस्तुतः कर्म फल त्याग और निष्काम कर्म–योग की अभिव्यक्ति है। यह साधक को एकाग्रचित्तता, कर्त्तव्यबोध, अनालस्य, कर्मनिष्ठा, कर्मफल में अनासक्ति, दृढ़ निचय एवं अध्यवसाय का पाठ कराती है। उसके आचरण और अभ्यास से प्रेमा भक्ति की पूर्व पीठिका तैयार होती है। यह भक्ति वस्तुतः साधक को प्रेमा भक्ति तक पहुँचने की मानसिकता के निर्माण का सोपान है। इस प्रकार की भक्ति बड़ी ही धैर्य परीक्षक, श्रम साध्य और साधक के दृढ़ निचय की परिचायिका है। भक्ति प्रेम का ही एक स्वरूप है। भगवान में जो परम प्रेम है वही वास्तविक भक्ति है। भक्ति के साधन की अन्तिम अवस्था प्रेम है।

वस्तुतः नवधा एक ऐसी माला है जिसके मनकों की विभिन्नता में तीव्र रति, प्रेम और मादकता का सूत्र उनको एकता में बाँधे रखता है। वे पृथक भी हैं, स्तरवार भी और सब मिल कर एक भी हैं। अतः चाहे जिस मनके से आरम्भ किया जाए उसका अगला या पिछला मनका स्वयंमेव आ जाएगा और प्रेम की चरम अनुभूति सभी स्थितियों में सदैव अंतरंग रहेगी।

चरणदास संत समाज के लोगों को नवधा भक्ति करने पर जोर देते हैं। इनका मानना है भक्त प्रहलाद प्रभु का वंदन करता है, लक्ष्मी सदैव जिसके चरण कमल की वंदना करती है, राजा बलि ने अपने तन को अर्पित करके प्रभु के द्वार को प्राप्त किया। भगवान राम के सेवक की पदवी हनुमान जी ने प्राप्त की। मित्र अर्जुन जिसकी महिमा का गुणगान करते हैं। भागवत पुराण का श्रवण कर राजा परीक्षित ने मुक्ति पाई। योग, ज्ञान और वैराग्य से अनोखी यह प्रेम की भक्ति है–

साधो नवधा भक्ति करौ रे।

ज्ञान जोग वैराग सवन सों प्रेम प्रीति है न्यारी।

चरणदास ने गुरु किरपा सों सांची बात बिचारी।।11

वैधि भक्ति

संत चरणदास में परम्परावादी शास्त्रोक्त पूजा उपासना पद्धतियों के प्रति आस्था का भाव है। सगुण उपासना की प्रायः सभी पद्धतियों इनके काव्य में देखने को मिलती हैं। स्वयं शुकदेव मुनि ने अपने ष्यि चरणदास को इस पद्धति के बारे में इस प्रकार बताया है–

सुन्दर मन्दिर नीके रचिये, गोल सिंहासन तामै सजिये।

पाय अष्ट कंवल आकरौ, कंचन का नग जड़ित निहारो।

तापै राधा श्याम सुजाना, वा छवि को निरखे करि ध्याना।

फूलन की माला पहिरावे, चन्दन तिलक ललाट चढ़ावै।

सकल सोज सों पूजा सरे, तन मन धन न्यौछावर करै।

दे परिक्रमा शी नवावै, चरणन से दोउ नैन छुडावै।

ताके पाछे दसहिं माला, गुरु मंत्र जब होए निहाला।

ताके पाछै तरपण कीजै, यह पूजा की विधि सुन लीजै।

भोग लगा कर भोजन खाइये, संध्या भोर आरती कहिये।।12

इन विधियों के साथ ही भक्तों और साधुओं के लिए विस्तृत दिनचर्या भी निर्धारित की गई है जो सभी पुराण और शास्त्रोक्त है और स्मारकों के लिए भी निहित है। इनमें से अधिकां शरीर के अन्दर तथा बाहर की स्वच्छता, शारीरिक और मानसिक स्वच्छता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार की सकाम या वैधि पूजा प्रेमा भक्ति की साधना का सोपान है। साधक को निरन्तर निष्काम भाव से इस पूजा में मानसी रूप से निरत रहना चाहिए। भक्ति सागर में चरणदास जी ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि–

पांति फूल जूं भाव सों, सह सुगन्ध करि धूप।

कहै शुकदेव यो कीजिए, पूजा अधिक अनूप।

नवधा भक्ति सम्भार, अंग नो जानिलै।

सरवण चितवन और कीर्तन मानिलै।

सुमिरण बन्दन ध्यान और पूजा करौ।

प्रभु सों प्रीति लगाय, सुरति चरणन धरौं।

होकर दासहिं भाव, साध संगति रलौं।

भगतनि की करि सेव, यही मत है भलौं।

यह जो मैंने कहा वेद का फूल है।

योग ज्ञान वैराग्य सभन का मूल है।

प्रेम भक्ति का तात, ताप तीनों नसै।

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तामैं बसैं।13

परन्तु जब तक प्रेमा की स्थिति नहीं आती तब तक साधक का मन मूर्ति पूजा और षढ़सोपचार में ही लगा रहता है। इसके लिए वह भगवान को साकार रूप में स्वीकार कर उसकी पूजा अर्चना करता है। पाषाण अथवा धातु की मूर्ति, मिट्टी या बालू की मूर्ति, लीपी हुई काठ की मूर्ति को ही वो अपना आराध्य मान कर अपनी भक्ति करता है। श्रीकृष्ण और राधा के मूर्ति स्वरूप को केसर, चन्दन, तुलसीपत्र, पुष्प तथा माला आदि से सुसज्जित कर वह नाम स्मरण और कीर्तन नृत्य एवं वन्दन से अपने प्रभु की आराधना करता है। उसका मानना है कि ऐसा करने से उसके सभी पाप मिट जाते हैं और वह मुक्ति पद का अधिकारी हो जाती है। संत चरणदास ने इसके समर्थन में कहा है कि–

बिन समझै पातक नौ, समझ जपै हों मुक्त।

चरणदास यों कहत हैं, जो कोइ जानै युक्त।

अचरज साधन नामका, भक्तियोग का जीव।

जैसे दूध जमाय कै, मथिकरि काढ़ा घीव।14

'श्रीमद्भागवत' में नाम स्मरण का बहुत महत्त्व है। प्रभु के नाम स्मरण से अनेक पापियों का उद्धार हुआ है। इसी से प्रभावित होकर संत चरणदास जी ने नाम की महिमा का यागान किया है। उनके अनुसार 'राम से बड़ो राम को नाम' वाली उक्ति सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। मेरा मानना है कि नवधा भक्ति में वैधि भक्ति भी शामिल है। यह जन साधारण के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त उपासना पद्धति है। इस मान्यता को आचरण रूप देने के समर्थन में चरणदास ने कहा है कि–

नवो अंग के साधतै उपजै प्रेम अनूप।

रणजीता यों जानिए सब धर्मन का भूप।15

प्रेमा भक्ति

भक्ति प्रेम का ही एक स्वरूप है। जब हमारी आत्मा का परमात्मा से एकाकार हो जाता है और हमारा अन्तःकरण ईश्वर अर्थात् परमात्मा से एकीकृत हो उठता है इसी को प्रेमाभक्ति कहते हैं। यह द्वैतभाव अद्वैत स्थिति को प्राप्त हो जाता है। पूरा संतमार्गी साहित्य प्रेमाभक्ति से ही युक्त है। अर्थात् जिस भक्ति में प्रेम या राग की प्रधानता होती है उसे प्रेमा भक्ति कहते हैं। रत्यानुभूति की तीव्रता इसका एक प्रमुख गुण है। भक्त की आराध्य के प्रति उसी प्रकार उत्कट इच्छा रहती है जिस प्रकार से माता के प्रति पुत्र, जल के प्रति मीन, स्वाति के प्रति चातक, चन्द्रमा के प्रति चकोर और प्रेयसी के प्रति प्रिय की होती है। इस तीव्र रत्यानुभूति में सम्पूर्ण बाह्य संवेदना की स्वतः उपेक्षा हो जाती है और विभिन्न उपासना पद्धतियाँ पीछे छूट जाती हैं तथा लोक मर्यादा एवं लौकिक मर्यादाएँ उपेक्षित हो जाती हैं।

संत चरणदास के काव्य में प्रेमा भक्ति की तीव्र वैकल्य युक्त रति का बड़ा ही सुन्दर चित्रण स्थान–स्थान पर मिलता है। एक स्थान पर तो वे अपने को प्रेमी अनुभव करते हुए अपने प्रियतम से कहते हैं कि उनके रोम–रोम में प्रिय का प्रेम उमड़ रहा है। वे अब पूर्ण रूप से प्रीतम के अधीन हो गए हैं। उन पर तन, मन सब न्यौछावर कर दिया और वे अब उससे पृथक नहीं रह सकते। वे कहते हैं कि–

तन व्याकुल जियै उमड़ोही आवे, रोम–रोम हरीरूप भई।

मोहनजी तुम साहिब मेरे, मैं हूँ दासि तिहारी।

तन, मन, धन सब तुम पर वारूँ, बार–बार बलिहारी।

तुम बिन हमरो कोऊ नाहीं, यह सरवन सुन लीजे।

चरणदास कूं चरणन सेती, नेक जुदो नहिं कीजे।16

चरणदास की जीवात्मा परमात्मा पर पूर्ण न्यौछावर होकर प्रभु से प्रेममय प्रार्थना कर रही है। यह स्थिति शरीर के सम्पूर्ण अनुभवों को भी प्रेममय बना देती है और इस स्थिति में चरणदास द्वारा वर्णित सम्पूर्ण अनुभव ही एक विरह व्यथित प्रेमिका के सदृय हो जाते हैं। सार्थक हृदय का प्रेम नेत्रों में झलक उठता है, कंठ अवरुद्ध हो जाता है और आँसू बहने लगते हैं–

हिरदे माहिं प्रेम जो, नैनों झलके आय।

सोइ छका हरिरस पगा, वा पग परसो धाय।

गद्गद् वाणी कंठ में, आँसू टपकें नैन।

वह तो विरहिनि रामकी, तलफत है दिनरैन।17

ई या प्रिय–मिलन की कामना चरणदास द्वारा इतने तीव्र रूप में चित्रित की है कि प्रिय के मिलन के बिना उन्हें अपना जीवन ही असम्भव ज्ञात होता है। प्रेमिका रूप में उनके समस्त बाह्य परिज्ञान समाप्त हो जाते हैं और अपनत्व भी पूर्णतः विस्मृत हो जाता है। विरहिणी प्रियतमा को किसी भी स्थिति में प्रियतम के अभाव में जीवन जीना मंजूर नहीं है तभी तो वह कह उठती है–

पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।

पिया मिलै तौ जीवना, नहीं तो छूटै प्रान।

मुख पियरो सूखै अधर, आँखैं खरी उदास।

आहिजु निकसै दुःख भरी, गहिरे नेत उसास।

वह विरहिनि बौरी भई, जानत ना कोइ भेद।

अगिनि बरै हियरा जरे, भये कलेजे छेद।18

चरणदास ने विरहिणी के विरह की चरमावस्था परमात्मा रूपी प्रियतम के अभाव में यह दृष्टांत प्रस्तुत किया है और उन्होंने विरही भक्त की दा को जाल में तड़ती एक मीन या हिरण अथवा घुन लगे हुए काठ या आग में सुलगती हुई लकड़ी जैसी बतायी है–

अपने वा वह ना रही, फँसी विरह के जाल।

चरणदास रोवत रहै, सुमिरि सुमिरि गुणख्याल।

बातन को विरहा लगो, जो घुन लागो दार।

दिन–दिन पीरी होतहै, पिया न बूझै सार।19

प्रिय का निरन्तर ध्यान और प्रेम की तीव्रता विरही को सम्पूर्ण बाह्य परिज्ञान से उपराम लेकर एकान्तिक चिन्तन तथा साधना प्रदान करती है और फिर वहाँ एकान्तिकता ही शेष रह जाती है–

विरहिनि एकै रामबिन, और न कोई मीत।

आठ पहर साठौ घड़ी, पिया मिलन की चीत।

जाप करै तौ पीवका, ध्यान करै तौ पीव।

पीव विरहिनिका जीवहै, जी विरहिनि का पीव।20

चरणदास का मानना है प्रियतमा का सब कुछ प्रियतम ही है। इस प्रकार विरह की उत्कटता, रति की तीव्रता तथा प्रेम की एकान्तिक अनुभूति से ही भक्त को वही उपदे सहज ही प्राप्त हो जाता है जो कि साधना की किसी भी अन्य विधि या वैधि उपायों के द्वारा प्राप्त होता है। चरणदास के काव्य में ऐसे बहुत से उदाहरण भरे पड़े हैं जिनमें ईवर प्रेम की अनुभूति इतनी प्रबल और तीव्र हो उठती है कि प्रेमानुभूति में भक्त नितान्त अन्तर्मुखी बनकर ना केवल बाह्य स्थूल संसार की वरन् अपने तन की भी सुध–बुध खो बैठता है। इन्होंने अनन्या हरि भक्ति को ही साध्य माना है। भक्त से ऐसी अपेक्षा की गई है कि वह निष्काम भाव से ईवर से प्रेम करे। अपने प्रभु में निरन्तर लौ लगाए। किसी अन्य देवी देवता की ओर उन्मुख न हो। चाहे उस ओर कितना ही प्रलोभन क्यों न दिखाई दे। उसका मन निरन्तर अपने ही ईा में रमा रहे या ये कहें कि अपने ईा के प्रति प्रेम में इतना अनुरक्त रहे कि उसे अन्य किसी के बारे में सोचने का अवसर ही प्राप्त न हो। चरण सेवा, राजसी और मानसी पूजन, वन्दन, आत्म निवेदन, साख्य, दास्य और प्रेमा। इनमें भी दास्य और प्रेमा भक्ति पर अधिक बल दिया गया है।

भक्ति के बिना की गई योग साधना तपस्या कहलाती है जिससे अभिष्ट की स्थाई सिद्धि सम्भव नहीं है। बिना भक्ति के ज्ञान की चर्चा करने वाला ज्ञानी भी भ्रष्ट है। वह निचय ही एक दिन विषयी मार्ग पर चलते हुए अन्त में अज्ञान के कूप में गिरता है। जैसे माता कि बिना बालक पथभ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार भक्ति के बिना ज्ञानी भी पथभ्रष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि भक्ति के अभाव में योग और ज्ञान ये दोनों निष्फल हैं। अतः भक्ति सभी साधना मार्गों में श्रेष्ठ है।

चरणदास के अनुसार प्रेमा भक्ति का विष महत्त्व है। माया के तीव्र प्रवाह से बचने के लिए यह अधिक शक्तिाली साधन है। जब यह भक्ति प्राप्त हो जाती है या अपना ली जाती है तो साधक चारों प्रकार की मुक्तियों से ही विरक्त हो जाता है तो फिर सांसारिक भोगों की तो बात ही बहुत दूर है। ज्ञान योग और वैराग्य का आधार ग्रहण कर वि सनकादिक भी भटकते रहे परन्तु हरि की प्राप्ति अंततः भक्ति के माध्यम से ही हुई। प्रेम भक्ति द्वारा ही आत्मा–परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करने में सफल होती है। चरणदास जी कहते हैं–

प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।

प्रेम भक्ति बिन साधुवा, सबही थोथा ध्यान।।

प्रेम छुटावै जगतकूँ, प्रेम मिलावै राम।

प्रेम करै गति औरही, लै पहुँचै हरिधाम।।21

भगवान को भक्ति प्यारी है। भक्ति और प्रेम के क्षेत्र में सब प्रकार का अभेद है। इसमें जाति, धर्म, कुल, ऊँच–नीच, अमीर–गरीब कोई भेद नहीं है। ईवर केवल प्रेम की भाषा को जानते हैं, समर्पण के भाव को पहचानते हैं। संत चरणदास जी कहते हैं–

सुनु राम भक्ति गति न्यारी है।

योग, यज्ञ, संयम अरु पूजा, प्रेम सबन पर भारी है।

जाति वरण पर जो हरि जाते, तौ गणिका क्यों तारी है।

प्रीति बराबर ओर न देखै, वेद पुराण बिचारी है।

चरणदास शुकदेव कहत हैं, ता बस आप मुरारी है।22

"प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए तत्कालीन संत लालदासजी भी ईवर तक पहुँचने का मार्ग प्रेम को ही मानते हैं। उनका मानना है कि सर्व शक्तिमान ईवर से मिलने का एक माध्यम जो संतों, सूफियों ने पहचाना है, वह है प्रेम। कबीर और नानक की भाँति उन्होंने भी प्रेम को ही महत्त्व दिया है और प्रेम का सीधा सम्बन्ध नाम स्मरण से होता है। जब हम किसी से प्रेम करते हैं तब उसके अच्छे और बुरे सभी गुणों को स्वीकार कर सदैव मन में उसका स्मरण करते हैं। मन में जो स्मरण भाव है वही प्रेम है।"23

भारतीय दर्शन के सांख्य और योग दर्नों ने भक्ति को प्रायः बहुत महत्त्व नहीं दिया परन्तु निरपेक्ष भाव से सन्तों ने जब भक्ति को देखा–परखा, ईवर को नजदीक से पहचाने का प्रयास किया तब उनको एक ही साधन समझ में आया और वह साधन था प्रेमा भक्ति। जब कृष्ण की प्रत्येक लीला मन में आनन्द उत्पन्न करती है तब सहज ही ईवरीय सामीप्य का बोध होने लगता है और भक्त प्रेममय भक्ति में आत्म विभोर हो जाता है।

जहाँ भक्त अपने भगवान के प्रेम में आकण्ठ डूबा होता है तो वहीं अपने प्रेमियों तथा भक्तों के लिए भगवान को भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। अनेक बार नाना योनियों में जन्म लेना पड़ता है तब भी भगवान् अपने भक्तों के ऋण से उऋिण नहीं हो पाते। कई बार तो प्रभु ने अपने भक्तों की सेवार्थ और रक्षार्थ पा रूप में भी जन्म लिया है। चरणदास जी के भगवान की यह वाणी उल्लेखनीय है–

जिनके कारण मैं रचौं, अद्भुत यह संसार।

उनहीं की इच्छा धरुं, हर युग में अवतार।।

प्रेमी को ऋणियाँ रह्यो, यही हमारो सूल।

चारि मुक्ति दई ब्याज में, दे न सकौं अब मूल।।

सर्वस दीन्हों भक्त को, देख हमारो नेह।

निर्गुण सों सर्गुण भयो, धरी पा की देह।।

मेरे जन मोमें रहें, मैं भक्तन के माहिं।

मेरे अरु मेरे संतके, कछु भी अन्तर नाहिं।24

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि प्रेम स्वरूपा भक्ति में भक्त और भगवान दोनों एक दूसरे के प्रति समर्पित होते हैं। भक्त अपने भगवान के हाथों बिका होता है तो भगवान अपने भक्त का ऋणी होता है। अर्थात् दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

साख्य भक्ति

नवधा भक्ति का वह प्रकार जिसमें इष्ट देव को भक्त, अपना सखा मानकर उसकी उपासना करता है। ईवर को अपना सखा समझकर उसे सर्वस्व समर्पण कर उसकी सेवा करना 'साख्य' भक्ति का अंतिम तथा सर्वोत्तम माध्यम है। संत चरणदास जी अवतारवाद, कर्मवाद, भाग्यवाद, जीवन मुक्ति, सामीप्य मुक्ति, मरणोंपरान्त प्राप्य स्वर्ग–नरक सिद्धान्त, पुनर्जन्मवाद, मूर्ति पूजा, शास्त्रोक्त लोक व्यवहार तथा साधना, द्वैताद्वैत वर्णन सिद्धान्त आदि के समर्थक थे। इनके उपास्य सखि परिकर सेवित राधा कृष्ण युगल हैं। इसमें पुरुषोत्तम तत्व को ही परातत्व माना गया है। जिसे चरणदास जी ने ऊँकार तत्व कहा है। जिसकी व्याख्या नित्य सगुण और साकार रूप में होती है। जो निरन्तर राधा कृष्ण के रूप में लीलायमान हैं।

जहाँ इन्होंने अपने सिद्धान्तों में पुरुषोत्तम तत्व को निर्गुण माना है वहाँ उनका तात्पर्य यह है कि उसमें माया के गुणों का नितान्त अभाव है। इसके साथ ही उसमें दिव्य कल्याणकारी गुणों का सर्वथा अभाव भी नहीं है। यदि वे ऐसा न मानते तो परम तत्व के सगुण वैष्णव रूप की उनकी मान्यता खण्डित हो जाती। उनका इस संदर्भ में तर्क संगत प्रतीत होता है–

वहि निरगुण सरगुण वही, वही दोनों से न्यार।

जो था सो जाना नहीं, शोचा बारम्बार।।

अनन्त शक्ति लीला अनन्त, गुण अनन्त बहु भाव।

कौतुक रूप अनन्त है, चरणदास बलिजाव।।

नाम भेद किरिया अनन्त, अनन्त धरै अवतार।

बीस चार तिनमें अधिक, कहै शुकदेव विचार।।

राम कृष्ण पूरण कला, चौबीसों में दोय।

निरगुण से सरगुण वही, भक्तौं कारण होय।25

जहाँ तक इनकी भक्ति के स्वरूप का प्रन है ये कहा जा सकता है कि ज्ञान, कर्म और योग से पोषित भगवत् विषयिणि सर्व समर्पणमयी अनन्य रति ही चरणदास जी की भक्ति का आर्दा और काम्य है। भक्ति रहित किसी भी प्रकार की साधना उनकी दृष्टि में व्यर्थ है। वे कहते हैं–

रहे अचाह न उपजै चाहा, केवल भक्ति करे हरि लाहा।

सकल जगत् को मिथ्या जानै, हरि बिन भाव न दूजा ठानै।

भक्ति योग वैराग्य जु ज्ञानी, साधु कर्म यह वेद बखानि।

औरों सुनो धरो मन धीरा, योग ज्ञान वैराग्य सरीरा।

ये तीनों नर रूप हैं, माया नारी सरूप।

बिना भक्ति इनको छलै, करि ले अपने रूप।26

इस भक्ति को पाने के लिए अनन्य शरणागति आवयक है। भक्ति के माध्यम से ही प्रभु की प्राप्ति होती है। संत चरणदास को कृष्ण भक्ति का संदे और आदे गुरु से प्राप्त हुआ था। वे कहते हैं कि–

पीत बसन सब राखियों, माटी का रंग होय।

गहियो मत भागवत का, धर्म वैष्णव सोय।।27

वैष्णव धर्म में भी संत चरणदास ने प्रेमा भक्ति या रसिक भाव की भक्ति को ही प्रास्त माना है। ये भक्ति अपनी सूक्ष्मता और अन्तर्मुखता में रहस्यवाद के निकट तक पहुँच जाती है। निचित ही चरणदास इस भक्ति से अवय प्रभावित थे। वृन्दावन में श्री राधा और कृष्ण के सखि परिकर सहित रास विलास का जो प्रत्यक्ष दृय अपनी वृन्दावन की यात्राओं में संत चरणदास ने देखा था उनके मस्तिष्क पर उसकी अमिट छाप पड़ गई थी। तभी से वे अपने आराध्य श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगे थे–

आसपास बहु कुंज हैं, बीच लाल को धाम।

चरणदास को दीजिये, सखियन में विश्राम।28

उनकी इस इच्छा के मूल में उनका यह स्वानुभव है कि परम पुरुष के स्थान या निवास तक केवल स्त्री रूप में ही पहुँचा जा सकता है। स्त्री रूप में भी सखी भाव का महत्त्व अधिक है। केवल साख्य भक्ति में वह शक्ति है कि वह उसके द्वार तक पहुँचा सकती है। अतः मात्र सखी भाव और सखी रूप ही वह साधन है जो आराध्य देव तक पहुँचाता है। नवधा भक्ति में सखी भाव की भक्ति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। जिसके तहत भक्त और भगवान के मध्य ऊँच–नीच का भाव समाप्त हो जाता है। भक्त अपने भगवान से एक सखा की तरह बर्ताव करता है और भगवान अपने सखा के इस बर्ताव से निहाल हो जाता है। संत चरणदास कहते हैं–

सखा भाव पहुँचत वहि ठांई, सखीभाव भीतर को जांई।

धरै स्वरूप अनूपम भारी, सदा सुहागिनि हरिपिय प्यारी।

परम पुरुष पुरुषोत्तम पावै, निकट रहैं नित केलि बढ़ावैं।

चारौ मुक्ति जहां कर जोरैं, भाव बताए तान बहु तोरैं।29

सखा भाव की भक्ति चरणदास के संपूर्ण साहित्य में प्रांसित एवं अनुमोदित है। जो प्रेमा भक्ति या उज्ज्वल रस की भक्ति का एक परिष्कृत रूप है। चरणदास जी सखी भाव की भक्ति की ओर उन्मुख थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि श्री चरणदास जी कभी–कभी सखी रूप में ईवर की आराधना करते थे। श्री भक्ति सागर ग्रन्थ में 'शब्द वर्णन' के अन्तर्गत सखी भावना के साथ विनती करते हुए कहते हैं–

चरणदासी यह सखी तिहारी, हौं शुकदेव दयाल

आय कृपा करि दर्शन दीजै, कीजै बेगि निहाल।।30

ऐसा माना जाता है कि चरणदास जी के शुकदेवपुरा वाले स्थान में जब रासलीला का आयोजन होता था तब स्वयं चरणदास जी गोपी का वे धारण कर लीला में शामिल होते थे। इस रासलीला में स्त्री और पुरुष दोनों ही समान रूप से भाग लेते थे। चरणदास जी के भक्ति सागर में संग्रहित अनेक पदों से उनकी सखी साधना के प्रति विष अनुराग को देखा जा सकता है–

चरणदास सखीपर शुकदेव गुरु कृपा कीन्ही,

बांकोसो बिहारी एक पल में दिखायो है।31

संत चरणदास की भक्ति भावना में साख्य भाव की भक्ति सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ थी। जिसे उनके सभी ष्यिों ने सहर्ष स्वीकार भी किया था। आज भी इनके थामों में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। शोध के दौरान जब मैं दिल्ली स्थित शुकदेवपुरा के स्थान पर गया तो वहाँ पर भी मुझे इसकी यह झलक स्पष्ट रूप से देखने को मिली। हालाँकि शोध के दौरान साहित्य के अध्ययन से मेरे मानस पटल पर चरणदास के इन पूजा स्थलों की जो छवि बनी थी, वहाँ पहुँच कर वह अवय धूमिल हो गई क्योंकि इनके जो मूल सिद्धान्त और नियम थे वे अब केवल इनके साहित्य में ही सिमट कर रह गए हैं।

परा भक्ति

प्रेम लक्षण भक्ति को सन्तों ने मध्यम प्रकार की भक्ति माना है और परा भक्ति को उत्तम भक्ति। उपनिषदों में परा और अपरा नामक विधाओं का विधान हुआ है। परा भक्ति एक ऐसी विधा है जिसके आधार पर अक्षर का ज्ञान हो सके। जब मन अविच्छिन भाव से भगवान के स्मरण में नियोजित हो जाय तभी परा भक्ति का विकास होता है। चरणदास जी की भक्ति साधना में परा भक्ति वैधि तथा प्रेमा भक्ति के बाद आती है। प्रेमा भक्ति की चरम निष्पन्नावस्था भक्त को पूर्ण निर्गुण अवस्था प्राप्त कराती है जो कि परावस्था कही जा सकती है। यह अवस्था अनुभूति की सर्वोच्चता या गहनता से उपलब्ध निरालम्ब स्थिति है जिसका वर्णन करना ही कठिन है। संत चरणदास ने परा भक्ति की शास्त्रीय परिभाषा देकर तो चित्रण नहीं किया है किन्तु भक्ति मार्ग में उपलब्ध इस पराभक्ति की दा का व्यावहारिक रूप से अनुभव उन्होंने कई स्थानों पर किया है। उनके अनुसार सम्पूर्ण ऐहिक स्वार्थों तथा वांछाओं का परित्याग करके पूर्ण निष्काम भक्ति करना ही भक्त का मुख्य उद्देय होना चाहिए–परा भक्ति अगाध अद्भुत विमल अरु निष्काम कामनाओं के परित्याग की सीमा में संत चरणदास अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कामना मोक्ष प्राप्ति के परित्याग को ही देते हैं–

स्वर्ग फलन की मोहि न आा, ना बैकुण्ठ ना मोक्षहि चाहूँ।

परा भक्ति में सम्पूर्ण बाह्य स्थूल स्तर समाप्त होते चले जाते हैं। पाँचों तत्त्व इन्द्रियों के आकर्षण तीनों गुण आदि से परे की स्थिति आ जाती है और यही भक्ति की निर्गुण स्थिति है– पाँचन को एकै करै, अनहद में रोक, त्रैगुण के ऊपर बसै जहाँ हर्ष ना शोक। जिसमें पूर्णक्यावस्था प्राप्त हो जाती है, ज्ञाता, ध्यान तथा ध्येय पूर्णतः एक हो जाते हैं। आराध्य तथा आराधक में से एक ही रह जाता है–

ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय जहँ नाहीं, ध्याता ध्यान ध्येय मिट जाहीं।

जबहों एक दूसरा नासें, बन्ध मुकत के रहैं न साँसें।33

यही वह अवर्णनीय आनन्द की स्थिति तथा वर्णनातीत अवस्था है, जो गूंगे के गुड़ की भाँति केवल अनुभव की जाती है, अभिव्यक्त नहीं की जाती। जिसको नारद भक्ति सूत्र में अथवा अन्य ग्रन्थों में अनिर्वचनीय तथा आस्वादनवत् आदि कहा जाता है। इस प्रकार भक्ति तथा सामान्यतया प्रत्येक साधना का अन्तिम लक्ष्य कैवल्य उपलब्ध हो जाता है। वस्तुतः प्रेमा भक्ति तथा परा भक्ति में कोई विष अन्तर नहीं है। दोनों में ही तीव्र रति के माध्यम से तद्रूपता प्राप्त होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि प्रेमा भक्ति में भक्ति मार्ग या रतिपूर्ण वेदना अथवा साधना पक्ष पर अधिक बल देकर उसके माध्यम से अद्वैत निर्गुणता अथवा तद्रूपता को उसका सहज प्राप्य मान कर चला गया है, जबकि परा भक्ति में तद्रूपता को ही लक्ष्य मान कर भक्ति के प्रेम तत्व पर बल दिया गया है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि चरणदास द्वारा दोनों ही भक्तियों को समान रूप से महत्त्व दिया गया है। किन्तु प्रेमा में साधना पक्ष को और परा में साध्य पक्ष को अधिक महत्त्व मिला है।

माधुर्य भक्ति

भगवान के प्रति मधुर प्रेम का आस्वादन करने के लिए भक्तों ने जिस उपासना को स्वीकार किया उसे माधुर्य भक्ति कहते हैं। भक्ति में भगवान के प्रति प्रिया की सी तन्मयता होना आवयक है। भक्तों ने इस तन्मयता की अनुभूति तीन प्रकार से की है–1. कान्ता भाव 2. गोपी भाव 3.सखी भाव। संत चरणदास के काव्य में सखी भाव का प्राधान्य है। इस भाव का उपासक कृष्ण प्रिया राधा के पद को प्राप्त करना ही अपना एकमात्र लक्ष्य समझता है। वह सखी रूपेन राधा कृ ष्ण की मधुर लीलाओं में लीन होकर उसी मधुर प्रेम का आस्वादन करता है। सखी भावोपासना चार तत्वों पर आधारित है–1. लीला तत्व 2. राधा तत्व 3. धाम तत्व 4. रासलीला तत्व। संत चरणदास के काव्य में सखी भाव का अवलोकन हम अपने शोध में इन्हीं तत्वों के आधार पर कर रहे हैं।

लीला तत्व– संत चरणदास तो कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में प्रेम बावरे ही हो गए और कहते हैं–

तुम बिन अति व्याकुल भइयाँ।

मोहूँ को दर्दा दिखावरे मोहन प्यारे।

चितवन नैन हँसन दसनन की, अटक रही हिय मइयां।

वह लटकन मटकन चटकन पट, मोरमुकुट की छवि छइयाँ।

अधर मधुर मुरली सुरगावत, टेरि बुलावत गइयाँ।

हाहा खाऊँ, शी नवाऊँ, और परूँ तोरे पइयाँ।

वारिहूँ वारी मुख ऊपर, दोउ कर लेहुँ बलइयाँ।

अब तौ धीर रह्यो नहिं रंचक, हो शुकदेव गुसइयाँ।

चरणदासी भई प्रेम बावरी, आनि गहो क्यों न बहियाँ।34

राधा तत्व– ब्रज चरित में राधा के आभूषणों की छवि का वर्णन करते हुए संत चरणदास को संकोच होता है–

राधे भूषण छवि कह गाऊँ, नाम लेत मन में शरमाऊँ।35

कदाचित इसी कारण राधा तत्त्व का विस्तृत वर्णन चरणदास जी की रचनाओं में नहीं मिलता। कुरुक्षेत्र लीला में अवय ही राधा की महिमा का वर्णन है। इसमें श्री कृष्ण ने राधा को ब्रजभूमि का टोना कहा साथ ही स्पष्ट कर दिया कि जो मुझे वा में करना चाहता है वह पहले राधा की सेवा में अपना चित्त लगाए–

यह सुनके जदुनाथ जू ऐसे बोलिया।

सबके नीकी भाँति जु हिय दृग खोलिया।।

एकै टौना जान सकल जग मांहि है।

इह सम टौना और दूसरो नाहिं है।।

ब्रज भूमि से एक यहै टौना आइया।

सो मैं मूरतवन्त तुम्हें दिखराइया।।

मन वच करकै मोहिं जु चाहे बा करै।

श्रीवृषभानुकुमारि की सेवा चित्त धरै।।36

धाम तत्त्व– चरणदास ने अन्य सखी भावोपासनाओं के समान वृन्दावन को लाल लाडिली का लीलाधाम माना है। वस्तुतः चरणदास के वृन्दावन के दो रूप हैं– (प). दिव्य या नित्य वृन्दावन– उनका यह अप्रकट या अव्यक्त वृन्दावन है। इस वृन्दावन को वही देख सकता है जिसने मन और इन्द्रिय पर विजय प्राप्त कर ली हो–

दिव्य वृन्दावन दिव्य कालिन्दी, देखै सो जीतै मन इन्द्री।37

यह महा वृन्दावन है जिसे अमरलोक धाम भी कहा गया है। जहाँ भक्त सखा भाव से ही पहुँच सकता है।

(पप) निज वृन्दावन– यह शरीरस्थ वृन्दावन है। जो सदैव ह्रदय में बसा रहता है।

निज वृन्दावन है वह ठाहीं, सदा बसो मेरे मन माहीं।38

चरणदास के वृन्दावन की नित्य निकुंजों में रंगमहल है जिसमें राधाकृष्ण विहार करते हैं–

तापर रंगमहल अधिकारी, कुन्दन रूप सरूप सुखारी।

नित विहार जहँ करें विहारी, कृष्ण कुँवर जहाँ राधा प्यारी।39

इस तरह माधुर्य भक्ति में संत चरणदास की आस्था सर्वाधिक है। वे अपने अन्तर्मन में ही वृन्दावन और उस वृन्दावन में राधाकृष्ण के रास–विहास को महसूस करते हैं और जब कोई भक्त इस स्थिति में पहुँच जाता है तो वह ईवर से एकाकार हो जाता है।

रासलीला तत्व– राधाकृष्ण के साथ असंख्य सखियाँ हैं जो अनेक प्रकार से रास खेला करती हैं। जहाँ अखण्ड रास हो रहा है, वहाँ सखियों के पगों में घुंघरू बज रहे हैं। सखियाँ अनेक प्रकार के दिव्य वस्त्राभूषण धारण किये हुए हैं। सभी सदा सुहागिन के वे में नृत्य कर रही हैं। विभिन्न प्रकार से राधा और कृष्ण के साथ रास–केलि का आनन्द उठा रही हैं। यह नित्य विहार दिव्यातिदिव्य है। सखियों के इसी युग में विश्राम पाने की कामना संत चरणदास जी कुछ इस प्रकार करते हैं–

चरणदास को दीजिए, सखियन में विश्राम।40

निष्कर्ष :–

इस प्रकार संत चरणदास के साहित्य में भक्ति अपनी पूर्ण पराकाष्ठा के साथ परिलक्षित होती है यद्यपि उसमें भक्ति के समस्त तत्व समाहित हैं किन्तु दिव्य वृन्दावन, दिव्य कालिन्दी, दिव्य आभूषण आदि उनकी भक्ति को योग से जोड़ देते हैं। सच तो यह है कि संत चरणदास की भक्ति ज्ञान और योग की त्रिवेणी है।

सन्दर्भ :–

1ण गुरु भक्ति प्रका–रामरूप जी पृ.सं. 143
2ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 179
3ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर पृ. सं. 180
4ण भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 350
5ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 351

6ण भक्ति पदार्थ–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 246
7ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 343
8ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 411
9ण धर्म जहाज–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 52
10ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 180
11ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 181
12ण गुरु भक्ति प्रका–रामरूप जी पृ.सं. 54
13ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 180
14ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 186
15ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 181
16ण श्रीधर ब्राह्मण लीला–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 505
17ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 182
18ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 183
19ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 183
20ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 183
21ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 182
22ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 338
23ण लालदास की वाणी– पृ.सं. 210
24ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 171
25ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 177
26ण लीला सागर–जोग जीत जी पृ.सं. 338
27ण गुरु भक्ति प्रका–संत रामरूप जी पृ.सं. 36
28ण अमरलोक अखण्डधाम वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 21
29ण अमरलोक अखण्डधाम वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 19
30ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 361
31ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 344
32ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 334
33ण भक्ति पदार्थ वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 179
34ण शब्द वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 361
35ण ब्रजचरित वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 9
36ण कुरूक्षेत्र लीला–भक्तिसागर–चरणदास पृ.सं. 529
37ण ब्रजचरित वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 6
38ण अमरलोक अखण्डधाम वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 19
39ण ब्रजचरित वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 8
40ण अमरलोक अखण्डधाम वर्णन–भक्ति सागर–चरणदास पृ.सं. 21